महिला सशक्तिकरण में वैधानिक अधिकारों की भूमिका : एक अवलोकन

डॉ. पूनम जोशी

अवधारणात्मक एवं सैद्धान्तिक विवेचन

सशक्तिकरण की अवधारणा की शुरूआत सन् 1980 के दशक में दोहरे उद्देश्यों को लेकर हुई थी। इसका पहला उद्देश्य तत्कालीन असमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना को चुनौती देना था और दूसरा इसी से जुडा अनिवार्य उद्देश्य आमूलचूल रूपान्तरण करने का रहा है। विकासात्मक समाजशास्त्रियों और महिलाओं के जीवन में सुधार में रूचि रखने वाले विद्वानों ने इसका प्रयोग लिंग सम्बन्धों में किया परन्तु ये केवल एक लैंगिक मुद्दा ही नहीं बल्कि विकासात्मक मुद्दा है और स्त्रियों और पुरूषों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। मोटे रूप में यह हाशिये पर जो समूह है (विशेषकर महिलाएं) उनसे संबंधित एक मुद्दा है। ये उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और शक्ति की अनुभूति तथा विस्तृत संदर्भ में स्व और दूसरों से सम्मान प्राप्ति के अधिकार को योग्यक्षम मानने के भाव का मुद्दा है। श्री लथा बाटलीवाला (2013) के शब्दों में "सशक्तिकरण से तात्पर्य विद्यमान शक्ति सम्बन्धों को चुनौती और शक्ति के स्रोतों पर (हाशिये पर रहने वाले समूहों द्वारा) अधिकाधिक नियंत्रण प्राप्त करने से है।"

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा बहुअर्थी है। जिसके आयाम भी बहुकोणीय हैं। किसी एक दृष्टि अथवा उसके व्यक्तित्व के किसी एक पहलू से उसे शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता है। उसका सर्वांगीण विकास करके ही देश की मुख्यधारा से उसे जोड़ा जा सकता है। प्रतापमल देवपुरा (2008) सशक्तिकरण के लिए लिखते हैं "महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनीतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन, कानून के तहत सुरक्षा एवं प्रजनन अधिकारों आदि को इसमें सम्मिलित किया जाता है। महिलाओं को जागरूक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधित साधनों को उपलब्ध कराया जाए ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और पुरूष–महिला समानता का लक्ष्य हासिल हो सके। सशक्तिकरण का अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानों में स्त्रियों की साझेदारी से भी है क्योंकि निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बड़ा मानक है।" महिला सशक्तिकरण की इसी अवधारणा को महिला सुदृष्ट बनाने में भारतीय संविधान ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सैंकड़ों वर्ष की गुलामी के पश्चात् 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। शताब्दियों से भारतीय महिलाओं की स्थिति दयनीय और शोचनीय रही है। अत्याचार, उत्पीड़न, दोहन उनके जन्म से जुड़े थे। स्त्री के केवल कर्तव्य होते थे अधिकार नहीं। इस तरह पुरूष और स्त्री की स्थिति में असमानता ही नहीं बल्कि बड़ी खाई रही है। संविधान निर्माताओं को इन वास्तविकताओं की भली भांति जानकारी थी। इसलिए उन्होंने भारतीय महिलाओं के उत्थान, कल्याण के लिए अनेक सकारात्मक उपाय किए जिन्हें संवैधानिक रूप से लागू भी किया गया। संवैधानिक प्रावधानों से भारतीय स्त्रियों की स्थिति में जहां सुधार देखने को मिल रहा है वहीं स्त्री में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। भारत में स्त्रियों को प्रदत्त वैधानिक अधिकार निम्न प्रकार से हैं:–

महिलाओं को प्राप्त वैधानिक अधिकार :

किसी भी देश के कानून अथवा सामाजिक विधानों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अमुक देश की सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक रूढ़ियां और परम्पराएं कैसी है? उस देश की महिलाओं की स्थिति कैसी है? इस प्रकार कानून अथवा अधिनियम समाज का दर्पण है। इस दृष्टि से हम सर्वप्रथम उन वैधानिक अधिनियमों को लेंगे जो अंग्रेजी शासन काल में बने और जिन्होंने स्त्री जगत की ज्वलंत समस्याओं के निराकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की।

सती प्रथा निषेध अधिनियम (1829) – सन् 1829 से पूर्व भारत में सती प्रथा का प्रचलन था। विधवा स्त्री को मृत–पति के साथ

चिता में जलाकर मरने के लिए प्रेरित और विवश भी किया जाता था। "इस अमानवीय कृत्य के विरूद्ध राजाराम मोहन राय ने आन्दोलन आरंभ किया। उन्होंने धर्मशास्त्र का अध्ययन करके इस तथ्य की पुष्टि की कि वेदों अथवा मनुस्मृति में विधवा के लिए सती होने की बात कहीं नहीं कही गई है। 1818 में सती होने वाली स्त्रियों की जो संख्या 829 थी वह घटकर 1839 में 463 रह गई।"

रामधारी सिंह दिनकर (2000) लिखते हैं कि "भारत में सती प्रथा के उन्मूलन का प्रयास सबसे पहले अकबर ने किया था, किन्तु अभी यह प्रथा चल रही थी अपनी भाभी के सती होने की घटना से उनके हृदय पर आघात पहुंचा था तथा उन्होंने सती प्रथा के विषय में तभी से आन्दोलन प्रारंभ किया। सन् 1929 में लार्ड विलियम बेंटिक ने सतीप्रथा को गैरकानूनी घोषित करके इसके विरूद्ध कड़ा कानून बना दिया। यह राम मोहन राय के ही प्रयासों का शुभ परिणाम था।"

बाल–विवाह निरोधक अधिनियम (1829) – बाल–विवाह को समाप्त करने के लिए 'ब्रह्म–समाज' और 'आर्य–समाज' का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। सन् 1929 में श्री हरविलास शारदा के प्रयासों से 'बाल–विवाह निरोधक' अधिनियम पारित हुआ। विवाह के समय लड़के–लड़कियों की आयु क्रमशः 18 वर्ष और 21 वर्ष होनी चाहिए। बाल–विवाह निरोधक अधिनियम को जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी, वह नहीं मिल पाई। कारण बाल–विवाह की प्रथा अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में है। परन्तु समाज भी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जागरूक हो गया है।

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) – समाज में विधवाओं की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी। ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक का ध्यान इधर गया और उन्होंने कानून के द्वारा विधवा–पुनर्विवाह की मांग की। परिणामस्वरूप सरकार ने हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम सन् 1856 को पारित कर दिया। इस अधिनियम के अंतर्गत विधवाओं एवं इनके माता–पिता को विधवा पुनर्विवाह का अधिकार दिया गया तथा साथ ही एक महिला को अपना जीवन पुनः प्रारंभ करने का अधिकार प्रदान किया।

हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम (1937) – इस अधिनियम के तहत विधवा के लिए सम्पत्ति संबंधी कुछ व्यवस्थाएं प्रदान की गईं। दायभाग में नियंत्रित परिवार में अगर बिना वसीयत किए ही किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में स्त्री को सम्पत्ति में पुत्र के बराबर अधिकार प्राप्त होगा।

विशेष विवाह अधिनियम (1954) – सन् 1954 के विशेष विवाह अधिनियम का प्रादुर्भाव हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत ये अधिकार दिया गया कि दो भारतीयों को चाहे वे किसी भी जाति या धर्म के हों, न्यायालय की सहायता से विवाह कर सकते हैं तथा लड़के की आयु 21 वर्ष और लड़की की आयु 18 वर्ष होनी अनिवार्य है। दोनों का मानसिक रूप से स्वस्थ व विवाह से सहमत होना इस विवाह की अनिवार्य शर्तों में आता है। इस अधिनियम ने स्त्रियों को अपने जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता प्रदान की। जीवनसाथी के चयन के निर्णय का अधिकार प्रदान किया।

भरण–पोषण अधिकार अधिनियम (1946) – हिन्दू स्त्रियों को तलाक का कानूनी अधिकार प्राप्त होना उनके निर्णय सम्बन्धी अधिकारों में अहम् भूमिका निभाता है। पति यदि पत्नी के साथ अत्याचार करता है और उसके साथ रहने से उसके जीवन को खतरा है, पति ने यदि दूसरा विवाह कर लिया है तो स्त्री को अपने भरण–पोषण के लिए मांग का अधिकार है ताकि वह सम्मानपूर्वक अपना जीवन जी सके। पति से पृथक रहने की कानूनी स्वीकृति प्राप्त कर लेने के पश्चात् अदालत स्त्री को पति की आय तथा उसकी स्थिति को ध्यान में रखकर भरण–पोषण के लिए उचित राशि प्रदान करवाती है।

स्वतंत्रता से पूर्व प्राप्त इन अधिकारों व अधिनियमों ने महिलाओं की परिस्थिति को उच्च करने में अपना पूर्ण योगदान दिया। परन्तु इनमें कुछ कमियां रह गयीं जिनके निराकरण के लिए स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक अधिनियम बने जो निम्न हैं :–

स्वतंत्रता के पश्चात् बने अधिनियम – स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक नवीन वैधनिक अधिनियम बने जिन्होंने निर्णय लेने की क्षमता को विकसित किया।

हिन्दू–विवाह अधिनियम (1955) नये विशेष विवाह अधिनियम का संशोधित रूप था। इस अधिनियम ने महिलाओं को अपनी स्वेच्छा से विवाह करने का अधिकार प्रदान किया गया तथा यदि उसके जीवनसाथ में किसी भी प्रकार की मानसिक या शारीरिक अयोग्यता प्राप्त करती है तो उसे यह भी अधिकार प्राप्त था कि वह इसके लिए अदालत का सहारा ले।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) – इस अधिनियम के लागू होते ही मिताक्षरा और दायभाग के नियम समाप्त कर दिए गए। इस अधिनियम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि एक महिला को प्रथम बार अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार दिया गया। सम्पत्ति के अधिकार में स्त्री–पुरूष दोनों को समान समझा गया।

हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम (1956) – इस अधिनियम में केवल लड़के को ही नहीं बल्कि लड़की को भी गोद लिया जा सकता है। एक विधवा स्त्री को अपनी सम्पत्ति के उपयोग के लिए गोद लेने का अधिकार प्रदान किया गया। वास्तव में इस अधिनियम की उपयोगिता तलाकशुदा महिला अथवा परित्यक्ताओं के लिए अधिक उपयोगी है। वर्तमान में तो एकल महिलाएं (अविवाहित महिला) भी दत्तक ग्रहण का अधिकार रखती हैं। जैसे ब्रह्माण्ड सुन्दरी सुष्मिता सेन जिन्होंने एकल महिला होते हुए दो पुत्रियों को गोद लिया।

दहेज निरोधक अधिनियम (1961) – दहेज निरोधक अधिनियम (1961, 64) – दहेज प्रथा हिन्दू समाज में एक दंश है जो एक नवविवाहित जोड़े व परिवारों के बीच वैमनस्य के बीज बोता है। दहेज पर नियंत्रण के लिए 1961 में सरकार ने यह अधिनियम पारित किया। इसमें दहेज लेने व देने दोनों को ही दंडनीय माना गया। अब लड़की यदि वर पक्ष पर दहेज का आरोप सिद्ध करती है तो वरपक्ष को दण्ड का भागी होना पड़ता है। वर्तमान में ऐसे कई घटनाक्रम हमारे समक्ष आए जिनमें महिलाओं ने दहेज के लालचियों की बारात बिना दुल्हन के वापस लौटा दी जो उनके निर्णय क्षमता को उजागर करता है।

चिकित्सा गर्भ समापन अधिनियम (1971) – 1971 में चिकित्सा गर्भ समापन अधिनियम पारित किया गया। जिसके अन्तर्गत गर्भवती महिला का गर्भ शल्यक दोनों को ही गर्भपात की अनुमति गई। यह अधिनियम केवल 12 सप्ताह तक के गर्भ के गर्भपात कराने की अनुमति देता है। गर्भपात उस स्थिति में करवाया जा सकता है जब गर्भवती महिला या बच्चे का जीवन खतरे में हो। यह अधिनियम बलात्कार से पीड़ित एक महिला को भी गर्भपात कराने का अधिकार प्रदान करता है।

कन्या भ्रूण हत्या अधिनियम (1944, 1996, 2003) – इन अधिनियम के अन्तर्गत लिंग जांच और चयन पर रोक लगा दी गई। इस अधिनियम को पी.सी.पी.एन.डी.टी एक्ट कहते हैं। यह महिला को अधिकार प्रदान करता है कि वह गर्व से तथा निश्चिन्त होकर अपने आने वाले शिशु का स्वागत करे।

घरेलु हिंसा संरक्षण अधिनियम (2005) – यह अधिनियम महिलाओं को अपने प्रति होने वाले शारीरिक, मानसिक, घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है।

मातृत्व लाभ अधिनियम (1961) – ये अधिनियम कामकाजी महिला को गर्भवती स्त्री को प्रसव के 4 सप्ताह पूर्व से लेकर 4 सप्ताह बाद तक सवैतनिक मातृत्व अवकाश प्रदान करता है।

समान मजदूरी अधिनियम (1976) – 1976 में समान पारिश्रमिक अधिनियम बनाया गया। जिसके तहत लिंग के आधार पर स्त्री व पुरूष श्रमिकों के मध्य किसी प्रकार के भेदभाव न करने का नियम बनाया गया।

अवलोकन व निष्कर्ष

भारत में महिलाओं से संबंधित कानूनों को कठोरता से लागू करने की आवश्यकता है। यद्यपि संविधान समय–समय पर बहुत से कानूनों का निर्माण करता है परन्तु वास्तविकता यह है कि स्त्री की स्थिति में पूर्व और वर्तमान में कोई विशेष अंतर नहीं आया। आज भी स्त्री आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से निर्भर है। आवश्यकता है तो अपने अधिकारों को व्यक्तिगत रूप से अनुभव करने की। यद्यपि इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि समकालीन परिस्थितियों में शिक्षा, मीडिया के माध्यमों से महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के अथक प्रयास जारी हैं। जो उनमें निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता को विकसित भी कर रहे हैं, परन्तु अभी तक छोटे कस्बों, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को विभिन्न प्रकार के कानूनों की जानकारी नहीं है और ना ही उनके पास इतने साधन हैं कि वे कानूनी रूप से संघर्ष कर अपने अधिकार प्राप्त कर सके। वास्तव में भारत की स्त्री जिन दिन आर्थिक रूप से स्वावलंबी और शिक्षित हो जाएगी वह अपना अधिकार लेने के लिए स्वतः सक्षम बन पाएगी।

व्याख्याता
(समाजशास्त्र)
एस.एस. जैन सुबोध पी.जी. महिला महाविद्यालय

संदर्भ सूची

Batliwal Shreelatha (2013). Engaging with empowerment: An Intellectual and Experimental Journey, Women Publisher.

रावत हरिकृष्ण (2006).उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश, जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स

दिनकर रामधारी सिंह (2000).संस्कृति के चार अध्याय, दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स

शुक्ल डॉ. सोमनाथ (2001).बीसवीं शती के राजनीतिक विचारक, कानपुरः आशीष प्रकाशन

गुप्ता मोतीलाल (1998).भारतीय सामाजिक संस्थाएं, जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

देवपुरा प्रतापमल (2008)कुरूक्षेत्र, मार्च

सिंह, वी.एन. एवं सिंह जनमेजय (2010).आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन